भगवती प्रसाद साह और अन्य

बनाम

दुल्हिन रामेश्वरी कुअर एवं एक अन्य

मई 7, 1951

(सैयद फज़ल अली, मुखर्जी और चंद्रशेखर अय्यर न्यायमूर्तिगण)

हिन्दू विधि—संयुक्त परिवार—संयुक्तता की उपधारणा—एक सदस्य का पृथक्करण—उसका प्रभाव—परिवार की पश्चात स्थिति के प्रमाण का भार—पृथक्करण का साक्ष्य—मृत सदस्य का कथन—साक्ष्य अधिनियम (I/1872), धारा 32(3)।

यद्यपि सामान्य सिद्धांत यह है कि एक हिन्दू परिवार को संयुक्त माना जाता है जब तक कि इसके विपरीत सिद्ध न हो जाए, तथापि जहाँ यह स्वीकार किया गया हो कि सहभाजकों में से एक ने स्वयं को संयुक्त परिवार के अन्य सदस्यों से पृथक कर लिया है और संयुक्त संपत्ति में उसका हिस्सा पृथक कर दिया गया है, वहाँ यह उपधारणा नहीं की जा सकती कि शेष सहभाजक संयुक्त बने रहे। दूसरी ओर, यह उपधारणा भी नहीं की जा सकती कि केवल इसलिए कि परिवार का एक सदस्य पृथक हो गया, समस्त सहभाजकों के बीच भी पृथक्करण हो गया है। प्रत्येक मामले में यह एक तथ्य का प्रश्न होगा, जिसका निर्धारण पक्षकारों की मंशा से संबंधित साक्ष्य के आधार पर किया जाएगा कि क्या अन्य सहभाजकों के बीच भी पृथक्करण हुआ था या वे संयुक्त रहे, और निस्संदेह प्रमाण का भार उस पक्ष पर होगा जो किसी विशेष स्थिति के अस्तित्व का दावा करता है, जिसके आधार पर वह राहत चाहता है।

पुनर्मिलन के मामलों को छोड़कर, केवल यह तथ्य कि पृथक हुए सहभाजक एक साथ रहने लगे या व्यापार अथवा संपत्ति के व्यवहार में संयुक्त रूप से कार्य करने लगे, उन्हें मिताक्षरा विधि के अधीन सहभाजक का दर्जा प्रदान नहीं करता।

किसी व्यक्ति द्वारा यह कथन कि वह उस संयुक्त परिवार से पृथक हो गया है, जिसका वह सहभाजक था, तथा संयुक्त संपत्ति में उसका कोई आगे का हित नहीं है या अपने पिता द्वारा छोड़ी गई संपत्ति में उसका कोई दावा नहीं है, ऐसे कथन उस व्यक्ति के हित के विरुद्ध कथन माने जाएंगे, और उसकी मृत्यु के पश्चात वे साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(3) के अधीन प्रासंगिक होंगे। यह अभिकथन कि पृथक्करण केवल उसके संबंध में ही नहीं बल्कि सभी सहभाजकों के बीच हुआ था, एक संबद्ध तथ्य के रूप में तथा उसी कथन के अभिन्न भाग के रूप में ग्राह्य होगा। केवल वही सटीक तथ्य ग्राह्य नहीं है जो हित के विरुद्ध हो, बल्कि वे सभी तथ्य भी ग्राह्य हैं जो "उसमें निहित हैं और उस कथन के साथ जुड़े हुए हैं।"

"संयुक्त परिवार" अभिव्यक्ति का प्रयोग विधिक अर्थ में भी तथा सामान्य अर्थ में भी किया जाता है। अतः किसी दस्तावेज़ में इस अभिव्यक्ति का प्रयोग मात्र इस निष्कर्ष तक आवश्यक रूप से नहीं ले जाता कि वह परिवार एक संयुक्त हिन्दू परिवार है, जिसमें उसके सभी विधिक लक्षण विद्यमान हों।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार:1950 की दीवानी अपील संख्या 83

पटना उच्च न्यायालय (न्यायमूर्ति मनोहर लाल तथा राय) द्वारा दिनांक 2 मार्च, 1948 को 1944 की मूल डिक्री से अपील संख्या 60 में पारित निर्णय एवं डिक्री के विरुद्ध अपील, जो कि सारण, छपरा के प्रथम अवर न्यायाधीश द्वारा 1941 की स्वत्व वाद संख्या 24 में दिनांक 22 दिसम्बर, 1943 को पारित निर्णय एवं डिक्री से उत्पन्न हुई।

अपीलकर्ताओं की ओर से *बख्शी टेक चंद* (साथ में *रामानुग्रह प्रसाद*)।

उत्तरदाता संख्या 1 की ओर से *गोपीनाथ कुंजरू* (साथ में *डी. के. सारण*)।

1951, 7 मई — न्यायालय का निर्णय मुखर्जी, न्यायमूर्ति द्वारा दिया गया।

मुखर्जी, न्यायमूर्ति— यह अपील पटना उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिनांक 2 मार्च, 1949 को पारित उस निर्णय एवं डिक्री के विरुद्ध है, जिसके द्वारा विद्वान न्यायाधीशों ने अपील में, 1941 की स्वत्व वाद संख्या 24 में सारण के द्वितीय अतिरिक्त अवर न्यायाधीश के निर्णय को उलट दिया।

वाद में पक्षकारों के मध्य विवाद केवल एक तथ्यात्मक प्रश्न पर केंद्रित है, अर्थात् क्या वादी के पिता, जिनकी मृत्यु 1926 में हुई, अपनी मृत्यु के समय प्रतिवादी संख्या 1 (जो उनका भतीजा है) के साथ संयुक्त थे या पृथक। यदि वे पृथक मरे, तो यह विवादित नहीं है कि उनकी संपत्ति उत्तराधिकार द्वारा उनकी विधवा को प्राप्त होगी और विधवा की मृत्यु के पश्चात वादी, जो उनकी पुत्री है, में निहित होगी। यदि, दूसरी ओर, वे संयुक्त मरे, तो संयुक्त संपत्ति में उनका हित उत्तरजीविता के द्वारा प्रतिवादी संख्या 1 को प्राप्त होगा, जो अपने पुरुष वंशजों के साथ मिलकर मिताक्षरा विधि द्वारा शासित एक संयुक्त हिन्दू परिवार का गठन करता है।

प्रारंभ में, पक्षकारों के अभिवचनों में वर्णित महत्वपूर्ण तथ्यों का संक्षिप्त सार प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा। एक श्यो नारायण साह, जो वादी तथा प्रतिवादी संख्या 1 दोनों के दादाजी थे, के तीन पुत्र थे: (1) इमृत, (2) जानकी और (3) राम नारायण। इमृत की शाखा का प्रतिनिधित्व वाद में प्रतिवादी 11 और 12 करते हैं, जो क्रमशः उसके पुत्र और पौत्र हैं। जानकी का एकमात्र पुत्र राम सरन है, जो प्रतिवादी संख्या 1 है। प्रतिवादी 2 से 4, प्रतिवादी संख्या 1 के पुत्र हैं और प्रतिवादी 5 से 10 उसके नाबालिग पौत्र हैं। राम नारायण की मृत्यु 1926 में हुई, और वे अपने पीछे अपनी विधवा सुमित्रा तथा एक पुत्री रामेश्वरी छोड़ गए, जो इस वाद की वादी है। सुमित्रा की मृत्यु 1933 में हुई और वादी का दावा है कि अपनी माता की मृत्यु के पश्चात वह राम नारायण की एकमात्र वारिस है। वादी के

अनुसार, वाद दायर किए जाने से लगभग 65 वर्ष पूर्व श्यो नारायण के तीनों पुत्रों के बीच भोजन, संपत्ति तथा व्यवसाय में पूर्ण पृथक्करण हो गया था। पृथक्करण के पश्चात, राम नारायण तथा प्रतिवादी संख्या 1 राम सरन ने संयुक्त रूप से एक कपड़े की दुकान चलाई और इस व्यवसाय के लाभ को मिलकर उपभोग किया, साथ ही संयुक्त नामों में संपत्तियाँ भी अर्जित कीं। किन्तु इन संपत्तियों और हितों को वे सह-स्वामियों के रूप में धारण कर सकते थे और वास्तव में उन्होंने ऐसा किया भी। सुमित्रा अल्पबुद्धि की महिला थी और राम नारायण की मृत्यु के पश्चात वह पूर्णतः प्रतिवादी संख्या 1 तथा उसके पुत्रों के प्रभाव में थी। वादपत्र में कहा गया है कि वर्ष 1928 में प्रतिवादी संख्या 11, जो इमृत का पुत्र है, ने प्रतिवादी संख्या 1 तथा उसके पुत्रों के उकसावे पर एक वाद दायर किया, जिसमें उसने इमृत के संयुक्त परिवार से पृथक्करण का खंडन किया तथा प्रतिवादी संख्या 1 और उसके पुत्रों के कब्जे में स्थित संपत्तियों को संयुक्त परिवार की संपत्ति बताया। कहा जाता है कि वह वाद एक मिलीभगतपूर्ण समझौते पर समाप्त हुआ और सुमित्रा को उस वाद में एक मिलीभगतपूर्ण लिखित कथन प्रस्तुत करने तथा आयुक्त के समक्ष यह मिथ्या साक्ष्य देने के लिए प्रेरित किया गया कि उसके पति की मृत्यु प्रतिवादी संख्या 1 के साथ संयुक्त रहते हुए हुई थी। वादी ने पूर्व में भी लगभग इन्हीं आरोपों के आधार पर एक वाद दायर किया था, किन्तु कुछ औपचारिक त्रुटियों के कारण उसे वह वाद वापस लेना पड़ा। वर्तमान वाद 20 दिसंबर, 1940 को दायर किया गया, जिसमें वादी ने वादपत्र की अनुसूची I से IV में वर्णित संपत्तियों का कब्जा प्राप्त करने के साथ-साथ पूर्व एवं भावी लाभ की भी प्रार्थना की।

प्रतिवादी 11 और 12 उपस्थित नहीं हुए और न ही उन्होंने वाद का प्रतिवाद किया। वाद का प्रतिवाद प्रतिवादी 1 से 4 द्वारा किया गया, जिन्होंने एक संयुक्त लिखित कथन दायर किया। नाबालिग प्रतिवादियों की ओर से, न्यायालय द्वारा नियुक्त अधिवक्ता

अभिभावक के माध्यम से एक अन्य लिखित कथन दायर किया गया, जो औपचारिक प्रकृति का था। इस लिखित कथन में मुख्य बात यह कही गई कि नाबालिगों के प्राकृतिक अभिभावकों को सूचना दिए जाने के बावजूद उन्होंने अधिवक्ता अभिभावक को समुचित निर्देश नहीं दिए।

प्रतिवादी 1 से 4 का प्रतिरक्षा मूलतः यह था कि वादपत्र में वर्णित अनुसार राम नारायण और प्रतिवादी संख्या 1 के बीच कोई पृथक्करण नहीं हुआ था, बल्कि प्रतिवादी संख्या 1 के पिता जानकी की मृत्यु के पश्चात केवल इमृत ही राम नारायण और प्रतिवादी संख्या 1 से पृथक हुआ, उस समय प्रतिवादी संख्या 1 की आयु मात्र पाँच वर्ष थी। राम नारायण और प्रतिवादी संख्या 1 पूर्ववत संयुक्त बने रहे, और चूँकि राम नारायण संयुक्त अवस्था में मरे, इसलिए प्रतिवादी संख्या 1 को उत्तरजीविता के अधिकार से समस्त संपत्तियाँ प्राप्त हुईं। यह भी नकारा गया कि सुमित्रा किसी प्रकार से प्रतिवादी संख्या 1 या उसके पुत्रों के प्रभाव में थी अथवा उसे प्रतिवादी संख्या 11 द्वारा दायर वाद में मिलीभगतपूर्ण लिखित कथन प्रस्तुत करने या उसमें साक्ष्य देते समय मिथ्या बयान देने के लिए प्रेरित किया गया था। अन्य कई आपत्तियाँ भी उठाई गईं, जिनसे वर्तमान प्रयोजन के लिए हमारा कोई संबंध नहीं है।

वाद में निर्धारित मुख्य मुद्दा, मुद्दा संख्या 6 था, जो इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया:-

"क्या राम नारायण साह, वादी के पिता, और प्रतिवादी संख्या 1 के बीच, जैसा कि आरोपित है, कोई पृथक्करण हुआ था?"

विचारण न्यायालय ने इस वाद में प्रस्तुत साक्ष्यों के विचार के पश्चात इस मुद्दे का निर्णय वादी के विरुद्ध किया और उसी आधार पर वाद को खारिज कर दिया। इस निर्णय

के विरुद्ध वादी द्वारा पटना उच्च न्यायालय में अपील दायर की गई, और उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने विचारण न्यायाधीश के निर्णय को पलटते हुए वादी के पक्ष में वादपत्र में की गई प्रार्थनाओं के अनुसार डिक्री प्रदान की। विचारण न्यायालय के निर्णय के पश्चात प्रतिवादी संख्या 1 की मृत्यु हो गई, और अब उसके पुत्र एवं पौत्र इस न्यायालय में अपील लेकर आए हैं। अपील के समर्थन में उपस्थित श्री बख्शी टेक चंद का मुख्य तर्क यह है कि पृथक्करण के प्रश्न पर उच्च न्यायालय द्वारा किया गया निष्कर्ष अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों द्वारा समर्थित नहीं है।

अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों पर विचार करने से पूर्व हम यह इंगित करना चाहते हैं कि इस वाद के स्वीकृत तथ्यों के आधार पर न तो किसी पक्ष के पक्ष में परिवार की संयुक्तता अथवा पृथक्करण के संबंध में कोई उपधारणा लागू होती है। सामान्य सिद्धांत निस्संदेह यह है कि एक हिन्दू परिवार को संयुक्त माना जाता है जब तक कि इसके विपरीत सिद्ध न हो जाए; किन्तु जहाँ यह स्वीकार किया गया हो कि सहभाजकों में से एक ने स्वयं को संयुक्त परिवार के अन्य सदस्यों से पृथक कर लिया है और संयुक्त संपत्ति में उसका हिस्सा अलग कर दिया गया है, वहाँ यह उपधारणा नहीं की जा सकती कि शेष सहभाजक संयुक्त बने रहे। दूसरी ओर, यह उपधारणा भी नहीं की जा सकती कि केवल इसलिए कि परिवार का एक सदस्य पृथक हो गया, समस्त सहभाजकों के बीच भी पृथक्करण हो गया है। प्रत्येक मामले में यह एक तथ्य का प्रश्न होगा, जिसका निर्धारण पक्षकारों की मंशा से संबंधित साक्ष्यों के आधार पर किया जाएगा कि क्या अन्य सहभाजकों के बीच भी पृथक्करण हुआ था या वे संयुक्त बने रहे। प्रमाण का भार निस्संदेह उस पक्ष पर होगा जो किसी विशेष स्थिति के अस्तित्व का दावा करता है, जिसके आधार पर वह राहत चाहता है। ये सिद्धांत, जो न्यायिक समिति के अनेक निर्णयों में स्थापित

किए गए हैं, हमें पूर्णतः उचित प्रतीत होते हैं (देखें—*बाल कृष्ण बनाम राम कृष्ण*[1], *पलानीअम्मल बनाम मुथुवेंकटाचला*[2] तथा *बालाबक्स लाधूराम बनाम रुक्माबाई*[3]। इस संदर्भ में एक अन्य बात ध्यान देने योग्य है कि प्रतिवादियों का यह न तो अभिवचनों में और न ही साक्ष्य में कोई कथन है कि यदि किसी पूर्व समय में राम नारायण और राम सरन के बीच पृथक्करण हुआ भी था, तो बाद में उनका पुनर्मिलन हुआ। अतः विवाद का दायरा इस संक्षिप्त प्रश्न तक सीमित हो जाता है कि क्या राम नारायण की मृत्यु से पूर्व किसी समय उनके और राम सरन के बीच पृथक्करण हुआ था। यदि, जैसा कि वादी का कथन है, तीनों भाइयों के बीच संयुक्त स्थिति का पूर्ण विच्छेद हो गया था, तो पृथक्करण के पश्चात राम नारायण और राम सरन का साथ रहना या अपनी संपत्तियों का इस प्रकार प्रबंधन करना, जैसा कि सामान्यतः संयुक्त हिन्दू परिवार के सदस्य करते हैं (जिसका इस मामले में दावा नहीं किया गया है), अप्रासंगिक होगा। पुनर्मिलन के मामलों को छोड़कर, केवल यह तथ्य कि पृथक हुए सहभाजक साथ रहने लगे या व्यापार अथवा संपत्ति के व्यवहार में संयुक्त रूप से कार्य करने लगे, उन्हें मिताक्षरा विधि के अधीन सहभाजक का दर्जा प्रदान नहीं करता। इन्हीं सिद्धांतों के आलोक में हम प्रस्तुत साक्ष्यों का परीक्षण करेंगे।

दोनों अधीनस्थ न्यायालयों ने पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत मौखिक साक्ष्य को पूर्णतः अविश्वसनीय मानकर अस्वीकार कर दिया है, और किसी भी पक्ष के विद्वान अधिवक्ता ने हमसे उस पर भरोसा करने का आग्रह नहीं किया है। अतः हम मौखिक साक्ष्य का उल्लेख आवश्यक नहीं समझते।

---

1 एल.आर. 58 आई.ए. 220

2 एल.आर. 59 आई.ए. 83

3 एल.आर. 30 आई.ए. 130

दस्तावेजी साक्ष्य के संबंध में यह स्वीकार करना होगा कि वर्तमान मामले में कोई विभाजन-पत्र नहीं है, और न ही ऐसा कोई दस्तावेज़ विद्यमान है जिसमें परिवार के सभी सदस्य पक्षकार हों और जो किसी स्वीकृत विभाजन के आधार पर निर्मित हुआ हो। इमृत का परिवार से पृथक्करण निस्संदेह स्वीकृत तथ्य है, किन्तु यह दर्शाने हेतु कि यह पृथक्करण कब हुआ, प्रतिवादियों की ओर से भी कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। प्रतिवादी संख्या 1 ने एक धन-वसूली वाद में, जिसमें वह पक्षकार था, वर्ष 1942 में अपने बयान में कहा कि उस समय उसकी आयु 81 वर्ष थी। यदि यह कथन सही है, तो राम सरन का जन्म लगभग 1861 में हुआ होगा और इमृत का पृथक्करण लगभग 1866 के आसपास माना जा सकता है।

अभिलेख पर उपलब्ध सबसे प्राचीन दस्तावेज़ प्रदर्श 2 है, जिसकी तिथि 30 सितम्बर, 1879 है। यह एक बंधक पत्र है, जो इमृत द्वारा राम नारायण के पक्ष में निष्पादित किया गया था। इस दस्तावेज़ में पृथक्करण का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है, किन्तु बंधक रखी गई संपत्तियों की सीमाओं का वर्णन स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि राम नारायण का हिस्सा इमृत से पृथक था। बंधक संपत्तियाँ दो मकान थीं, जिनमें से एक दहियावाँ में स्थित था, और इस मकान की उत्तरी सीमा इस प्रकार वर्णित है—"राम नारायण साहू का मकान, जो मेरे, निष्पादक के, *पट्टीदार* हैं, पृथक किया हुआ।" इससे स्पष्ट होता है कि इमृत और राम नारायण के बीच विभाजन हो चुका था और राम नारायण का अपना पृथक मकान था। इस दस्तावेज़ में यह नहीं कहा गया है कि यह मकान राम नारायण और राम सरन की संयुक्त संपत्ति थी। प्रदर्श 2(ए) एक अन्य बंधक पत्र है, जो इमृत और राम नारायण के बीच दिनांक 21 मार्च, 1885 का है, और इसमें बंधक संपत्ति की उत्तरी सीमा "राम सरन साहू की बकासत भूमि, जो मेरे, निष्पादक के, *पट्टीदार* हैं" के

रूप में वर्णित है। यह वादी के पक्ष में एक सशक्त साक्ष्य है, और प्रदर्श 2 तथा 2(ए) को एक साथ देखने पर यह वैध रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राम सरन भी पृथक थे और उनके हिस्से में कुछ *बकासत* भूमि आवंटित थी। यह विषय लगभग निर्णायक रूप से प्रदर्श 2(बी) नामक एक अन्य दस्तावेज़ के उल्लेख से सिद्ध हो जाता है, जो कि इमृत द्वारा राम नारायण के पक्ष में निष्पादित एक पंजीकृत बंधक पत्र है, जिसकी तिथि 8 नवम्बर, 1898 है। इस दस्तावेज़ में निम्नलिखित आशय का उल्लेख है:—

"मैं, निष्पादक, लंबे समय से राम नारायण साहू तथा अपने भतीजे राम सरन साहू से पृथक रह रहा हूँ और भोजन में भी पृथक हूँ, और पृथक्करण के समय समस्त चल एवं अचल संपत्तियों का तीनों पक्षों के बीच विभाजन कर दिया गया था। पृथक्करण के पश्चात समस्त व्यवसाय अलग-अलग संचालित किया जा रहा है।"

दस्तावेज़ में आगे यह भी उल्लेख है कि पिता श्यो नारायण साहू इस विभाजन के पक्षकार थे और उन्हें निवास के लिए एक मकान तथा व्यापार और भरण-पोषण के लिए ₹1,100 नकद दिए गए थे, और उनकी मृत्यु के पश्चात ये संपत्तियाँ भी तीनों पुत्रों के बीच विभाजित कर दी गईं। यह कहा गया है कि इमृत को अपने पिता द्वारा छोड़ी गई नकद राशि में से ₹ 334-7-9 उसका हिस्सा प्राप्त हुआ, और इस राशि को उसने अपने ऋण की आंशिक अदायगी के रूप में राम नारायण को दे दिया। इसके अतिरिक्त, अनुसूची में वर्णित बंधक संपत्ति की सीमा के विवरण में उत्तरी सीमा "राम सरन साहू, जो मेरे, निष्पादक के भतीजे हैं, का मकान" के रूप में उल्लिखित है।

इन कथनों की सत्यता पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि ये एक प्राचीन दस्तावेज़ में उस समय किए गए थे जब इन विषयों के संबंध में पक्षकारों के बीच कोई विवाद उत्पन्न नहीं हुआ था। तथापि, यह प्रश्न उठाया गया कि क्या इमृत का यह

कथन विधिक रूप से साक्ष्य के रूप में ग्राह्य है। निस्संदेह इमृत का देहांत हो चुका है, और प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित श्री कुंजरू ने तर्क दिया कि यह कथन भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(7) के अंतर्गत साक्ष्य में स्वीकार किया जा सकता है। हमें यह निश्चित नहीं है कि धारा 32(7) वास्तव में प्रतिवादियों के लिए सहायक है। वह विशिष्ट अधिकार, जो हमारे समक्ष विवाद का विषय है, निस्संदेह इस लेन-देन में प्रतिपादित किया गया था, किन्तु साक्ष्य अधिनियम की धारा 13(ए) के अर्थ में यह उसी द्वारा प्रतिपादित नहीं था। तथापि, हमारे विचार में ये कथन साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(3) के अंतर्गत स्वीकार किए जा सकते हैं। किसी व्यक्ति का यह कथन कि वह उस संयुक्त परिवार से पृथक हो गया है, जिसका वह सहभाजक था, तथा संयुक्त संपत्ति में उसका कोई आगे का हित नहीं है या अपने पिता द्वारा छोड़ी गई संपत्तियों में उसका कोई दावा नहीं है, ऐसे कथन उस व्यक्ति के हित के प्रतिकूल होते हैं, और उस व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात वे साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(3) के अंतर्गत प्रासंगिक हो जाते हैं। यह अभिकथन कि पृथक्करण केवल उसके संबंध में ही नहीं बल्कि सभी सहभाजकों के बीच हुआ था, एक संबद्ध तथ्य के रूप में तथा उसी कथन के अभिन्न अंग के रूप में ग्राह्य होगा (देखें—स्मिथ बनाम ब्लेकी[4] में ब्लैकबर्न, न्यायमूर्ति का कथन)। केवल वही सटीक तथ्य ग्राह्य नहीं है जो हित के प्रतिकूल हो, बल्कि वे सभी तथ्य भी ग्राह्य हैं जो "उसमें निहित हैं और उस कथन के साथ जुड़े हुए हैं।" (देखें—विगमोर ऑन एविडेंस, कंडिका 1465)।

हम उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों से सहमत हैं कि प्रदर्श 2, 2(ए) तथा 2(बी) को एक साथ देखने पर यह अत्यंत संतोषजनक साक्ष्य प्रदान करते हैं कि श्यो नारायण के सभी पुत्रों के बीच पृथक्करण हुआ था, और यह भी प्रदर्शित करते हैं कि यह पृथक्करण श्यो नारायण के जीवनकाल में ही हो गया था। इस निष्कर्ष को उस अवधि में

4 एल.आर. 2 क्यू.बी. 326

निष्पादित अन्य कई दस्तावेज़ों के उल्लेखों से भी सुदृढ़ता प्राप्त होती है। वस्तुतः 1905 से पूर्व ऐसा कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जिससे यह सिद्ध हो कि राम नारायण और राम सरन ने किसी लेन-देन में संयुक्त रूप से भाग लिया हो, अथवा उन्होंने किसी संपत्ति का अधिग्रहण संयुक्त नामों में किया हो।

ऐसा प्रतीत होता है कि जिस दिन प्रदर्श 2(बी) निष्पादित किया गया, उसी दिन इमृत द्वारा राम सरन के पक्ष में एक अन्य बंधक पत्र भी निष्पादित किया गया था, और यद्यपि वह दस्तावेज़ प्रस्तुत नहीं किया गया है, तथापि उस लेन-देन का उल्लेख एक बाद के दस्तावेज़, अर्थात् प्रदर्श सी(9), में किया गया है, जहाँ स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यह राशि इमृत ने राम सरन की निधि से बंधक पत्र के आधार पर प्राप्त की थी। प्रदर्श सी(5) दिनांक 14 फरवरी, 1880 का एक विक्रय विलेख है, जिसके द्वारा वेलायत मियाँ ने एक मकान राम नारायण को बेचा, और यह दस्तावेज़ केवल राम नारायण के नाम पर है। अपीलकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया है कि इस मकान को राम नारायण और राम सरन दोनों की संयुक्त संपत्ति के रूप में माना गया था, जैसा कि प्रदर्श सी(7) नामक कोबाला से स्पष्ट होता है, जो 23 मई, 1925 को दोनों द्वारा संयुक्त रूप से दुल्हिन राम कुअर के पक्ष में निष्पादित किया गया था। यह कहा गया है कि यही संपत्ति बाद के विक्रय विलेख का विषय थी। हमने दोनों दस्तावेज़ों में दी गई संपत्तियों की सीमाओं और विवरण की तुलना की है, और हम इस निष्कर्ष पर पहुँचने में असमर्थ हैं कि वे एक ही संपत्ति से संबंधित हैं। प्रदर्श सी(7) द्वारा संबंधित संपत्ति महालिया करीम चक में स्थित है, जबकि वेलायत मियाँ द्वारा बेची गई संपत्ति दहियावाँ में स्थित थी। तीनों दिशाओं में उनकी सीमाएँ भी पूर्णतः भिन्न हैं। प्रदर्श सी(8) इस अवधि के दौरान निष्पादित एक अन्य विक्रय विलेख है, जिसकी तिथि 13 दिसंबर, 1898 है, और इस दस्तावेज़ में भी राम

नारायण ही राम सिंगारी सिंह से एक निश्चित संपत्ति के एकमात्र क्रेता के रूप में दर्शाए गए हैं। यहाँ भी अपीलकर्ताओं का कथन है कि इस संपत्ति को सर्वे खतियान में राम नारायण और राम सरन की संयुक्त संपत्ति के रूप में प्रदर्शित किया गया था। हम इस तर्क को सही मानने के लिए सहमत नहीं हैं। खतियान संख्या 233 में जो संपत्ति राम नारायण और राम सरन के संयुक्त नामों में दर्ज है, वह मौजा पुरबरी तेलपा में स्थित है, जबकि प्रदर्श सी(5) द्वारा संबंधित संपत्ति तेलपा बुज़ुर्ग में है। इसके अतिरिक्त, प्रदर्श सी(5) में संपत्ति का क्षेत्रफल मात्र 6 कट्ठा 8 धूर है, जबकि बंदोबस्त अभिलेखमें दर्ज संपत्ति एक बीघा से अधिक है। अतः सभी पूर्ववर्ती दस्तावेज़ उस निष्कर्ष का समर्थन करते हैं जो प्रदर्श 2, 2(ए) और 2(बी) से निकाला जा सकता है कि श्यो नारायण के तीनों पुत्रों के बीच पृथक्करण हो गया था, यद्यपि उस पृथक्करण के सटीक समय का निर्धारण संभव नहीं है।

1905 के बाद हम दस्तावेज़ों की एक अन्य श्रृंखला पर आते हैं, जिन पर अधीनस्थ न्यायाधीश ने इस निष्कर्ष के समर्थन में विशेष बल दिया कि राम नारायण और राम सरन निरंतर संयुक्त बने रहे। यह सत्य है कि इस तिथि से लगभग 20 वर्षों की अवधि के दौरान अनेक ऐसे लेन-देन मिलते हैं जिनमें राम नारायण और राम सरन ने संयुक्त रूप से भाग लिया और जिनमें से कुछ में उन्हें संयुक्त हिन्दू परिवार के सदस्य के रूप में वर्णित किया गया है। हमारे मत में उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष सही है कि इस अवधि में राम नारायण और राम सरन द्वारा संयुक्त रूप से संचालित कपड़ा एवं साहूकारी का व्यवसाय संभवतः एक समृद्ध उद्यम बन गया था। राम नारायण का कोई पुत्र नहीं था और राम सरन अनाथ था, इसलिए चाचा और भतीजे के बीच घनिष्ठता स्वाभाविक रूप से बढ़ गई, और बाह्य रूप से वे संयुक्त परिवार के सदस्यों के समान व्यवहार करते थे, जिसमें स्वाभाविक रूप से चाचा प्रमुख होता। यह भी स्वाभाविक था कि संयुक्त व्यवसाय के लाभ

से अर्जित संपत्तियाँ दोनों के नामों में ली जाएँ और वादों तथा अन्य विधिक कार्यवाहियों में वे संयुक्त पक्षकार के रूप में प्रस्तुत हों। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या इन दस्तावेज़ों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राम नारायण और राम सरन सदैव संयुक्त थे, और क्या ये दस्तावेज़ उन पूर्ववर्ती दस्तावेज़ों से उत्पन्न पृथक्करण के निष्कर्ष को निष्प्रभावी करने के लिए पर्याप्त हैं? प्रदर्श इ एक ज़रपेशगी विलेख है, जो इमृत के पुत्रों द्वारा राम नारायण और राम सरन के पक्ष में संयुक्त रूप से निष्पादित किया गया था। इस पट्टे का प्रतिफल वह राशि थी, जो उन्हें 8 नवम्बर, 1895 को उनके पक्ष में पृथक-पृथक निष्पादित बंधक पत्रों के अधीन देय थी। इन बंधक पत्रों में से एक, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, प्रदर्श 2(बी) है, जबकि दूसरे का अस्तित्व प्रदर्श सी(9) में उल्लिखित है। यद्यपि प्रदर्श 2(बी) में यह कहा गया था कि तीनों भाई पृथक थे, प्रदर्श इ में यह उल्लेख है कि राम नारायण और राम सरन संयुक्त रूप से रह रहे थे और उनका व्यवसाय संयुक्त था। हमारे विचार में प्रदर्श इ का यह कथन प्रदर्श 2(बी) के उल्लेख का खंडन नहीं करता। ऐसा संभव है कि दोनों भाइयों के बीच पूर्ण पृथक्करण हो चुका हो, और फिर भी यह पूर्णतः संभव है कि बाद में, जब राम नारायण और राम सरन ने संयुक्त रूप से व्यवसाय करना प्रारंभ किया, तो वे संयुक्त हिन्दू परिवार के सदस्यों के समान रहने लगे हों।प्रदर्श सी(3) दिनांक 9 जुलाई, 1909 का एक विक्रय विलेख है, जो बीबी बेचन द्वारा राम नारायण और राम सरन के पक्ष में निष्पादित किया गया था। यह कुछ आश्चर्यजनक है कि विक्रेता, जो पूर्णतः अपरिचित व्यक्ति थी, इस दस्तावेज़ में यह उल्लेख करती है कि क्रेता आपस में चाचा-भतीजे के संबंध में हैं और एक संयुक्त परिवार के सदस्य हैं। प्रदर्श सी(4) दिनांक 7 मई, 1913 का एक अन्य विक्रय विलेख है, जो किशुन चंद और गोपी चंद द्वारा केवल राम नारायण के पक्ष में निष्पादित किया गया था। इस दस्तावेज़ में राम सरन को

क्रेता के रूप में नहीं दर्शाया गया है। अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता का तर्क है कि इस भूमि को सर्वे खतियान में राम नारायण और राम सरन दोनों के संयुक्त नामों में दर्ज किया गया था, किन्तु विक्रय विलेख में दी गई भूमि का विवरण खतियान में वर्णित विवरण से पूर्णतः भिन्न है। क्षेत्रफल तथा तौजी संख्या—दोनों के संबंध में स्पष्ट अंतर है। प्रदर्श सी(2), जो 20 अप्रैल, 1922 को मुस्तफा हुसैन द्वारा राम नारायण और राम सरन के पक्ष में निष्पादित एक विक्रय विलेख है, उसमें क्रेताओं को निष्पादक के संयुक्त ज़रपेशगीदार के रूप में वर्णित किया गया है, किन्तु उन्हें संयुक्त परिवार के सदस्य के रूप में वर्णित नहीं किया गया है। इसी प्रकार, प्रदर्श सी(एच) में भी, जो एक विक्रय विलेख है, राम नारायण और राम सरन को विक्रेता के संयुक्त ऋणदाता के रूप में वर्णित किया गया है। राम नारायण के जीवनकाल में निष्पादित अन्य एकमात्र विक्रय विलेख प्रदर्श सी(1) है। यह भी राम नारायण और राम सरन दोनों के पक्ष में निष्पादित एक विक्रय विलेख है, किन्तु इसमें भी उन्हें संयुक्त परिवार के सदस्य के रूप में वर्णित नहीं किया गया है।

हमारे मत में, इन सभी विक्रय विलेखों का समुचित विचार करने पर यह निष्कर्ष आवश्यक रूप से नहीं निकलता कि राम नारायण और राम सरन के बीच प्रारंभिक पृथक्करण नहीं हुआ था, जैसा कि वादी ने आरोपित किया है और पूर्ववर्ती दस्तावेज़ों द्वारा सिद्ध किया गया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि राम नारायण और राम सरन ने संयुक्त रूप से कपड़ा एवं साहूकारी का व्यवसाय संचालित किया। उपर्युक्त विक्रय विलेखों में विक्रेताओं ने इसी संयुक्त साहूकारी व्यवसाय से ऋण लिया था और अधिकांश मामलों में विक्रय का प्रतिफल उन व्यक्तियों द्वारा बकाया ऋण की अदायगी था। अतः यह स्वाभाविक था कि ऐसी संपत्तियाँ राम नारायण और राम सरन दोनों के संयुक्त नामों में खरीदी जाएँ। प्रदर्श सी(3) को छोड़कर, इन दस्तावेज़ों में कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि वे संयुक्त हिन्दू

परिवार के सदस्य थे, और यदि ऐसा कोई उल्लेख होता भी, तो उनके द्वारा परिवार के भीतर और बाहर अपने व्यवहार के तरीके को देखते हुए उसमें कोई असामान्यता नहीं होती।

तथापि, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने राम नारायण तथा राम नारायण की मृत्यु के पश्चात सुमित्रा द्वारा विभिन्न वादपत्रों और बयानों में दिए गए कथनों पर विशेष बल दिया, जिनमें स्पष्ट रूप से कहा गया था कि राम नारायण और राम सरन एक संयुक्त हिन्दू परिवार का गठन करते थे, जिसके कर्ता राम नारायण थे। प्रदर्श के(2), जो वर्ष 1917 में दायर एक बंधक वाद का वादपत्र है, उसमें कंडिका (वाई) में निम्नलिखित कथन है—

"वादपत्र में उल्लिखित बंधपत्र केवल वादी संख्या 1 के पक्ष में निष्पादित किया गया है, जो संयुक्त परिवार का प्रधान एवं प्रबंधकारी सदस्य है, किन्तु वादी संख्या 2, जो वादी संख्या 1 का भतीजा है, दावा की गई राशि में आधे हिस्से का अधिकारी है। अतः वह सह-वादी के रूप में सम्मिलित हुआ है।"

यह ध्यान देने योग्य है कि उस वाद में वादी संख्या 1 राम नारायण थे और वादी संख्या 2 राम सरन थे। प्रदर्श के(1), जो वर्ष 1924 के एक अन्य बंधक वाद का वादपत्र है और जिसमें राम नारायण तथा राम सरन दोनों वादी के रूप में थे, उसके कंडिका 6 में यह कहा गया है कि वादी संख्या 2 (राम सरन) वादी संख्या 1 (राम नारायण) के साथ एक संयुक्त परिवार का सदस्य है, और इसलिए उसे भी वाद में सम्मिलित किया गया है। अंत में, हमारे समक्ष वर्ष 1923 में राम नारायण और राम सरन द्वारा दायर एक अन्य बंधक वाद (प्रदर्श के) के वादपत्र में निम्नलिखित कथन है—

"कि वादीगण एक संयुक्त परिवार के सदस्य हैं और संयुक्त रूप से साहूकारी का व्यवसाय करते हैं। बंधक पत्र परिवार के किसी भी सदस्य के पक्ष में निष्पादित किए जाते हैं। अतः जिस बंधक पत्र पर वाद किया गया है, वह केवल वादी संख्या 1 के पक्ष में निष्पादित किया गया था, किन्तु दोनों वादियों का उस पर दावा है।"

सर्वप्रथम यह इंगित किया जा सकता है कि ये कथन उन वादपत्रों में किए गए हैं जो उन बंधक वादों में दायर किए गए थे, जो राम नारायण और राम सरन द्वारा संयुक्त रूप से संचालित साहूकारी व्यवसाय से उत्पन्न हुए थे। चूँकि व्यवसाय संयुक्त था, अतः यदि बंधक पत्र केवल एक ऋणदाता के नाम पर भी लिया गया हो, तो सभी प्रकार के जोखिम से बचने के लिए यह आवश्यक था कि दोनों वादी के रूप में सम्मिलित हों। इसी उद्देश्य से, यह स्पष्ट करने के लिए कि वादित बंधक पत्र दोनों वादियों के नाम पर क्यों नहीं था, प्रत्येक वादपत्र में यह स्पष्टीकरण जोड़ा गया था। द्वितीयतः, यह ध्यान देने योग्य है कि इन वादपत्रों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि राम सरन का भी बंधक राशि में समान हिस्सा है। मिताक्षरा संयुक्त परिवार के संदर्भ में, जहाँ कर्ता या प्रबंधक स्वयं ही वाद दायर कर सकता है और लेन-देन कर सकता है, यह असामान्य तथा अनुपयुक्त होता कि किसी अन्य सहभाजक के हिस्से का इस प्रकार पृथक उल्लेख किया जाए। तृतीयतः, "संयुक्त परिवार" अभिव्यक्ति का प्रयोग विधिक अर्थ में भी तथा सामान्य अर्थ में भी किया जा सकता है, और वर्तमान मामले की परिस्थितियों में यह मानना अनुचित नहीं होगा कि इसका प्रयोग यहाँ सामान्य अर्थ में किया गया था। बंधक वाद में राम नारायण द्वारा दिया गया बयान (प्रदर्श एन) भी स्थिति को विशेष रूप से सुदृढ़ नहीं करता। अपने बयान में राम नारायण ने इस प्रकार कहा—

"राम सरन साहू मेरा भतीजा है और हम संयुक्त रूप से कार्य करते हैं। मैं अपने परिवार का *कर्ता* हूँ।"

यहाँ भी यह ध्यान देने योग्य है कि यह बयान एक बंधक वाद में केवल इस उद्देश्य से दिया गया था कि राम सरन को सह-वादी के रूप में सम्मिलित करने का औचित्य सिद्ध किया जा सके; अतः प्रयुक्त शब्दों पर अत्यधिक बल नहीं दिया जा सकता। श्री बख्शी टेक चंद ने वादी की माता सुमित्रा द्वारा किए गए कथनों पर भी विशेष बल देने का प्रयास किया, जो उसने इमृत के पुत्र द्वारा प्रतिवादियों के विरुद्ध दायर वाद में अपने लिखित कथन में तथा उसी वाद में आयुक्त के समक्ष दिए गए अपने बयान में किए थे। यह ध्यान देने योग्य है कि वादी उस वाद की पक्षकार थी, किन्तु बाद में राम सरन और उसके पुत्रों ने उसका नाम उस वाद से हटवा दिया, ताकि उनके और उस वाद के वादी के बीच उसकी अनुपस्थिति में समझौता याचिका प्रस्तुत की जा सके। उस वाद में आयुक्त के समक्ष दिए गए सुमित्रा के बयान से प्रतीत होता है कि वह पूर्णतः प्रतिवादी संख्या 1 और उसके पुत्रों के प्रभाव में थी। हमारे मत में उच्च न्यायालय ने उसके बयान के कुछ अंशों पर सही रूप से बल दिया है, जहाँ उसने अपनी इच्छा के विरुद्ध भी कुछ स्वीकारोक्तियाँ कीं। उसके बयान में एक बात यह कही गई थी कि वास्तव में दो नहीं, बल्कि तीन मकान थे, जो पूर्ण विभाजन की कहानी के अनुरूप है। दूसरे, उसने यह भी स्वीकार किया कि इमृत का पृथक्करण श्यो नारायण के जीवनकाल में ही हुआ था। यह स्पष्ट है कि इस महिला का ज्ञान अत्यंत सीमित था और प्रतिवादियों की इच्छा के अनुसार उससे कुछ भी कहलवाया जा सकता था, क्योंकि वह स्वयं यह भी नहीं जानती थी कि उत्तर, दक्षिण, पूर्व या पश्चिम क्या होता है। उसे धन की गणना करना भी नहीं आता था और यह भी ज्ञात नहीं था कि उसका पति अपना व्यवसाय कैसे संचालित करता था। ऐसी परिस्थितियों में, हम इस

महिला के साक्ष्य को अधिक महत्व देने में असमर्थ हैं, यद्यपि यह कुछ आश्चर्यजनक है कि उसने अपनी ही पुत्री के हित के विरुद्ध कोई कथन किया।

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा जिन अन्य दो प्रकार के दस्तावेज़ों का उल्लेख किया गया है और जो हमारे वर्तमान प्रयोजन के लिए प्रासंगिक हैं, वे हैं—बंदोबस्त अभिलेख तथा लेखा-बही । बंदोबस्त अभिलेख, प्रदर्श 4 तथा आर, हमारे मत में विवादित प्रश्न के निर्णय के लिए निर्णायक नहीं हैं। इन अभिलेखों से यह स्पष्ट होता है कि कुछ भूमियाँ केवल राम नारायण के नाम पर दर्ज हैं, जबकि अन्य भूमियाँ राम नारायण और राम सरन दोनों के नामों में दर्ज हैं, साथ ही यह टिप्पणी भी है कि संपत्तियों में दोनों के समान हिस्से हैं। यदि वास्तव में परिवार प्रारंभ से ही संयुक्त होता और राम नारायण कर्ता होते, तो समस्त भूमियाँ केवल राम नारायण के नाम पर ही दर्ज होतीं। यह तथ्य कि कुछ भूमियाँ केवल राम नारायण के नाम पर दर्ज हैं, जबकि अन्य संयुक्त नामों में दर्ज हैं, स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि यह वास्तविक अर्थ में मिताक्षरा संयुक्त परिवार नहीं था। इस संदर्भ में दो महत्वपूर्ण दस्तावेज़ों का उल्लेख किया जा सकता है, जिन पर उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने उचित महत्व दिया है। ये हैं—प्रदर्श जी तथा प्रदर्श ।। प्रदर्श जी एक त्याग-पत्र है, जिसके द्वारा राम नारायण ने श्री ठाकुर लक्ष्मी नारायण स्वामीजी महाराज के पक्ष में अपने दावे का परित्याग किया। यह दस्तावेज़ 9 नवम्बर, 1899 का है, और इसके द्वारा राम नारायण ने उन कुछ संपत्तियों में अपने हित का परित्याग किया, जिन्हें उन्होंने अपने नाम से, किन्तु देवता के लाभ के लिए क्रय किया था। इस दस्तावेज़ में यह उल्लेख है कि राम नारायण अपने जीवनकाल में मंदिर के प्रबंधक बने रहेंगे तथा संपत्तियों का प्रबंधन और व्यवस्था अपनी इच्छानुसार करेंगे, और उनकी मृत्यु के पश्चात उनके सगे भाई के पुत्र राम सरन साह तथा उसके बाद राम सरन

साह के उत्तराधिकारी और प्रतिनिधि प्रबंधक होंगे। इस दस्तावेज़ पर राम सरन साक्षी के रूप में हस्ताक्षरकर्ता था। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि राम नारायण के पास अपनी स्वतंत्र संपत्ति थी, जिसका वह अपने विवेकानुसार निपटान कर रहे थे, और यह सब उनके भतीजे की जानकारी में था, जिसे उनके संयुक्त सहभाजक के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। यदि यह परिवार द्वारा स्थापित कोई दान होता, तो यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं थी कि राम नारायण की मृत्यु के पश्चात उनका भतीजा प्रबंधक बनेगा, क्योंकि प्रबंधकीय अधिकार स्वाभाविक रूप से राम सरन की वंशावली में चला जाता। इसके पश्चात के दस्तावेज़ (प्रदर्श ।), जो राम नारायण की मृत्यु से कुछ समय पूर्व निष्पादित हुआ था, द्वारा इस व्यवस्था में परिवर्तन किया गया और एक महंत, अर्थात् महंत गोस्वामी हृदय सरन देवजी, को इस दान-संपत्ति का प्रबंधक नियुक्त किया गया। यह इस बात को सिद्ध करता है कि राम नारायण ने अपनी संपत्तियों पर पूर्ण एवं असीमित अधिकार का प्रयोग करते हुए उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार निपटाने का प्रयास किया, और यह कि वे संपत्तियाँ, जो उसके और उसके भतीजे द्वारा संयुक्त व्यवसाय के लाभ से अर्जित नहीं की गई थीं, उस पर पूर्णतः उसकी स्वयं की थीं। जहाँ तक इस वाद में प्रस्तुत लेखा-बही का संबंध है, ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों का यह कथन पूर्णतः सही नहीं है कि दो पृथक खातों का संधारण समानांतर रूप से किया जा रहा था—एक राम नारायण के नाम पर और दूसरा राम सरन के नाम पर। कम से कम, प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित अधिवक्ता हमें यह संतोषजनक रूप से प्रदर्शित नहीं कर सके कि यही वास्तविक स्थिति थी। तथापि, हमारा मत है कि लेखा-बही में जिन प्रविष्टियों की ओर अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने हमारा ध्यान आकर्षित किया, वे प्रतिवादियों के पक्ष को सुदृढ़ नहीं करतीं। हम उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों से सहमत हैं कि ये प्रविष्टियाँ

अनिर्णायक हैं और अधिक से अधिक संदिग्ध प्रकृति की हैं। उदाहरणार्थ, कुछ व्यय राम सरन तथा अन्य व्यक्तियों के पुरी जाने के संबंध में राम नारायण के खाते में आरोपित किए गए हैं। यह ज्ञात नहीं है कि वास्तव में राम सरन के साथ पुरी कौन-कौन व्यक्ति गए थे और क्या उनमें स्वयं राम नारायण की पत्नी और पुत्री सम्मिलित थीं या नहीं। पुनः, कुछ राशियाँ *सतैसा* समारोह के संबंध में आरोपित की गई हैं, किन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि यह *सतैसा* समारोह किसका था। निस्संदेह, राम सरन की पुत्री के विवाह से संबंधित कुछ व्ययों का उल्लेख इन लेखा-बही में मिलता है और वे राम नारायण के खाते में आरोपित हैं। हमने स्वयं इन प्रविष्टियों का अवलोकन किया है। ये बहुत छोटी राशियों से संबंधित हैं, जो मुख्यतः अतिथियों को आमंत्रित करने तथा उनसे प्राप्त उपहारों के संदर्भ में किए गए व्यय हैं। ये वास्तविक विवाह-व्यय नहीं हैं, और बेहतर साक्ष्य के अभाव में हम यह कहने में असमर्थ हैं कि वे "संयुक्त परिवार" के अस्तित्व के प्रतिवादियों के कथन का समर्थन करते हैं, उस शब्द के वास्तविक विधिक अर्थ में।

परिणामस्वरूप, समग्र विचार के पश्चात हमारा मत है कि उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों द्वारा लिया गया दृष्टिकोण सही है और वास्तव में श्यो नारायण के जीवनकाल में केवल इमृत ही नहीं, बल्कि परिवार के सभी सदस्यों के बीच पृथक्करण हो चुका था। चूँकि प्रतिवादियों की ओर से पुनर्मिलन का कोई मामला प्रस्तुत नहीं किया गया है, अतः यह तथ्य कि राम नारायण और राम सरन साथ रहते थे, संयुक्त रूप से व्यवसाय करते थे, तथा संयुक्त नामों में संपत्तियाँ अर्जित करते थे, या यह कि बंदोबस्त अभिलेखों में उनके नाम संयुक्त धारकों के रूप में दर्ज थे, अधिक से अधिक उनके बीच सह-स्वामित्व उत्पन्न कर सकते हैं, किन्तु मिताक्षरा विधि के अंतर्गत ऐसा संयुक्त स्वामित्व नहीं बनाते जो उत्तरजीविता के सिद्धांत को आकर्षित करे। अतः प्रतिवादी संख्या 1 को राम नारायण की

संपत्तियों पर उत्तरजीविता के आधार पर कोई अधिकार प्राप्त नहीं हुआ, और इस आधार पर वादी का दावा स्वीकार किया जाना उचित है।

तथापि, हम उस रूप में उच्च न्यायालय द्वारा पारित डिक्री की पुष्टि करने में असमर्थ हैं, जिस रूप में वह वादी के पक्ष में दी गई है। वादी ने वादपत्र की अनुसूची I से IV में वर्णित संपत्तियों पर दावा किया था। लिखित कथन के कंडिका 21 में प्रतिवादियों द्वारा स्पष्ट रूप से यह कहा गया था कि वादपत्र के अंत में दी गई संपत्तियों की सूची तथा उनका मूल्यांकन गलत है। यह भी कहा गया कि कुछ संपत्तियाँ अस्तित्व में ही नहीं हैं; कुछ ऋण कालबाह्य हो चुके हैं और कुछ अन्य के संबंध में दावे खारिज कर दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त, कुछ संपत्तियाँ राम नारायण और राम सरन की संयुक्त स्वामित्व वाली थीं, जिनकी संपूर्णता पर वादी दावा नहीं कर सकती थी। इन प्रतिरक्षाओं के आधार पर विचारण न्यायालय में मुद्दा संख्या 7 निर्धारित किया गया था, जिसमें यह विचार किया जाना था कि यदि वादी यह सिद्ध कर दे कि उसके पिता पृथक अवस्था में मरे, तो वह किन-किन संपत्तियों का कब्जा प्राप्त करने की अधिकारी होगी। विचारण न्यायालय ने वाद को पूर्णतः खारिज कर देने के कारण इस मुद्दे पर निर्णय देना आवश्यक नहीं समझा। परंतु उच्च न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार किए बिना ही वादी के पक्ष में उसके वादपत्र की प्रार्थनाओं के अनुसार डिक्री प्रदान कर दी। यह भी उल्लेखनीय है कि वादी ने अपने वादपत्र में पूर्व लाभ के रूप में ₹ 6,600 का दावा किया था तथा भावी लाभ की वसूली के लिए भी प्रार्थना की थी। वादी को, यदि कोई, कितनी राशि भावी लाभ के रूप में प्राप्त होने की अधिकारी होगी तथा इनका निर्धारण किस आधार पर किया जाना चाहिए—यह मुद्दा संख्या 8 का विषय था, और इस मुद्दे का भी उच्च न्यायालय द्वारा निर्णय नहीं किया गया। इन परिस्थितियों में, यद्यपि हम उच्च न्यायालय के इस निर्णय से सहमत हैं कि वादी के पिता

प्रतिवादी संख्या 1 से पृथक अवस्था में मरे थे और परिणामस्वरूप प्रतिवादी संख्या 1 को उत्तरजीविता के अधिकार से किसी संपत्ति का दावा करने का अधिकार नहीं था, तथापि उन संपत्तियों का निर्धारण करने के लिए जिनके संबंध में कब्जा की डिक्री दी जा सकती है, तथा भावी लाभ के निर्धारण हेतु, इस मामले को उच्च न्यायालय को वापस भेजा जाना आवश्यक है।

अतः परिणामतः, हम उच्च न्यायालय के निष्कर्षों की पुष्टि करते हैं और मामले को इस निर्देश के साथ पुनः प्रेषित करते हैं कि मुद्दा संख्या 7 और 8 के निर्धारण के पश्चात विधि के अनुसार इसका निपटारा किया जाए। विद्वान न्यायाधीशों को यह स्वतंत्रता होगी कि वे इन मुद्दों को विचारण न्यायालय को वापस भेजकर अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य या पक्षकारों को प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाने वाली अतिरिक्त साक्ष्य के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त करें। वादी-उत्तरदात्री अपील की लागत की अधिकारी होगी। अन्य लागतें अंतिम परिणाम के अधीन रहेंगी।

मामला पुनः प्रेषित।

अपीलकर्ताओं के अभिकर्ता : ताराचंद ब्रूमोहनलाल।

उत्तरदाता संख्या 1 के अभिकर्ता : आर. सी. प्रसाद।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।